IJAER/ November-December 2024/Volume-13/Issue-6 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal) Impact Factor:7.06

वर्तमान समाज में चरित्र निर्माण सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में

अस्सिटेंन्ट प्रोफेसर, राकेश कुमार,

विषय संस्कृत (विद्या संबल योजना)

M.A.J College Deeg Rajasthan

सारांश

मानवीय चरित्र भारतीय सस्कृति के माध्यम से यदि समाज का होता तो आज मानवीय चरित्र इतना गिरता नही इसी का उल्लेख मैने अपने इस शोध पत्र में किया है। जो इस प्रकार हैं, दृश्य माध्यमों के लिए चरित्र निर्माण की प्रक्रिया पर बात करते हुए भरतमुनि से लेकर अरस्तू स्तानिस्लाव्स्की, ब्रेख्त आदि ने इसे एक कठिन कर्म माना है। चरित्र की परिकल्पना यानि अभिनय कला को व्याख्यायित करते हुए भरत तीन पदों का प्रयोग करते है, जिसे चरित्र निर्माण की प्रक्रिया के चरण भी कहा जा सकता है। अभिनेता जो वेष या बाना धारण करता है, वह उसके लिए एक आच्छादन या खोल हो जाता है। उसमें रहकर वह परभावकरण करता है। यानि अभिनेता पात्र हो जाता है बाना या वेष चरित्र है जिसे अपनी भीतर भरकर पात्र – चरित्र रूप में परिकल्पित हो जाता है। वेष का आशय है कि पात्र किसी भूमिका को ओढ़ता है। इस ओढ़ने में सात्विक, वाचिक, आंगिक और आहार्य चारों प्रकार के अभिनय कर्म शामिल होते हैं। भूमिका का ओढ़ना बाह्य भी है और आन्तरिक भी। बाह्य उपादान अवलम्बन हैं प्रमुखता भीतर से वेष को धारण करने की है। इस वेष के आच्छादन के बावजूद भरत मानते हैं कि अभिनेता में यह गुण भी हो कि वह अभिनीत चरित्र भी रहे और दूसरा व्यक्ति चरित्र भी रहे। यानि पात्र से चरित्र निर्माण की प्रक्रिया में पात्र का चरित्र और अभिनीत चरित्र का चरित्र भी मंच पर साथ–साथ दिखने चाहिए यही, परभावकरण है। यहाँ अभिनेता को अपने खुद के जीव में भी रहना है और भूमिका के जीव में भी घुसना है। अर्थात् दो चरित्रों को एक साथ जीना है। इसलिए दृश्य माध्यमों की चरित्र निर्माण प्रक्रिया अन्य साहित्यिक विधाओं की भाँति सहज नहीं।

मुख्य शब्द, चरित्र निर्माण, स्तानिस्लाव्स्की, मुखौटा, द्वन्द्व, आक्रोश, नाट्यालोचन आदि।

प्रस्तावना, उन्नीसवीं शती की एक प्रख्यात अभिनेत्री फैनी कैम्बल ने इसी परभावकरण को अपने ढंग से बताया है– "अभिनय का एक रोचक पक्ष यह है कि अभिनय के दौरान हमारा मस्तिष्क एकसाथ दो प्रक्रियाओं से गुजरता है।[1] यह दोनों प्रक्रियाएँ एक दूसरे के विरुद्ध है फिर भी यहाँ एक साथ चलती हैं। उदाहरण के लिए मिसेज बेवरली के आखिरी मैं दुःख दृश्य में जब से अधमरी होकर जोर जोर से रो रही थी... तो मैं देख रही थी कि मेरे आंसू गिर रहे हैं और उससे मेरा रेशमी परिधान खराब हो रहा है।"[2] भारत ने अपने नाट्य दर्शन में चरित्र परिकल्पना की प्रक्रिया में सहायक मुखौटों की चर्चा भी की है। नाट्यशास्त्र के 21वें अध्याय में भरतमुनि का आग्रह अभिनय की उस भावप्रवण, सूक्ष्म प्रविधि की ओर है, जिसके द्वारा अभिनेता अपने भीतर अपना मुखौटा स्वयं रचता है। इस प्रकार भरत चरित्र की परिकल्पना में अभिनेता से श्स्वश की सीमा का विसर्जन कर स्वयं को असीम बनाने को कहते हैं। भरत मानते हैं कि अभिनेता अपने सत्व में स्थित रहकर नाट्य विश्व की रचना कर देता है। भरत की ही भाँति पश्चिम में स्तानिस्लाव्स्की

ने भी चरित्र परिकल्पना पर बात करते हुए इसकी प्रक्रिया में पात्र के आत्मिक और शारीरिक तत्वों को जोड़ने की बात कही है। स्तानिस्लाव्स्की मानते हैं कि 'रचनात्मक कार्यों में एक चरित्र का काम सिर्फ बाह्य रूप को दिखाना भर नहीं होता उसे अपनी हकीकत को पात्र की हकीकत से जोड़ना होता है। अपनी आत्मा से पात्र के चरित्र को जीवंत रूप देना होता है। चूंकि हमारी कला का मूल उद्देश्य है इंसान की आत्मा की आन्तरिक सच्चाई।'[3] इसके लिए स्तानिस्लाव्स्की ने चरित्र निर्माण की प्रक्रिया पर विस्तृत विचार किया और पात्र के दैहिक, मनोवैज्ञानिक तथा आन्तरिक उत्थान से चरित्र निर्माण की प्रक्रिया को जोड़ा। स्तानिस्लाव्स्की, ग्रोतोव्स्की और आर्तो ने भी यह माना कि। "जब हम अभिनय करते हुए किसी अनुभव से गुजरकर किसी मुकाम पर पहुँचते है तब अपने से सवाल करते हैं कि क्या सीखा या फिर कैसा अनुभव रहा, तो इतना कहा जा सकता है कि कुछ पहले से साफ रोशनी, कुछ पहले से अधिक विस्तार और सच को समझने की दिशा में आगे एक कदम। ... स्तानिस्लाव्स्की, ग्रोतोव्स्की और आर्तो इन तीनों के रंगमंच के सरोकार और उद्देश्य लगभग एक ही रहे हैं। ... रंगमंच इनके लिए मात्र मनोरंजन नहीं था, वरन् एक सामाजिक, नैतिक, शिक्षा का माध्यम था।"[4]

जिसमें चरित्र परिकल्पना की प्रक्रिया को इन्होंने भी सामाजिक निर्माण की प्रक्रिया से जोड़कर देखा। वस्तुतः मनुष्य जिन परिस्थितियों से बनता है, उन्हीं को बनाता और बदलता भी चलता है। वह निरा पुतला, निरा जीव नहीं है वह व्यक्ति है, बुद्धि विवेक सम्पन्न व्यक्ति। सड़क, घर, दफ्तर कहीं भी टकरा जाने वाला यह सामान्य मनुष्य ही वह कच्चा माल है जिसे अपनी कला के स्पर्श से नाटककार पात्र से चरित्र में निर्मित करता है। डॉ० गुलाबराय के शब्दों में 'नाटक का चरित्र एक ऐसी कलात्मक और संश्लिष्ट सृष्टि है जिसमें सामान्य और व्यक्ति का समन्वय हो गया है।'[5] मूल रूप में चरित्र नाटककार की मानस सन्तान है, फिर भी चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया में वह स्वयं को जगत और जीवन के यथार्थ से अलग नहीं कर सकता। हालांकि वह जगत का अनुकरण ही है यथार्थ जगत भी नहीं है।

चरित्र निर्माण की प्रक्रिया जीवन के समस्त द्वन्द्व, आक्रोश और जीवनी शक्ति को एकसाथ लेकर चलने की प्रक्रिया है। बकौल शैल्डान चेनी – कलाकार निर्देशक प्रायः सम्पूर्ण प्रक्रिया को फिर से रच कर अभिनय के बहाव को अटूट और अनवरत बनाता है और रचना की उत्प्रेरिका शक्तियों को समन्वित तथा संश्लिष्ट करता है।' अर्थात् शेल्डान चेनी के अनुसार नाटकीय चरित्र की सृष्टि भी दोहरे स्तर पर होती है, इसी कारण नाटक की चरित्र परिकल्पना प्रक्रिया अधिक श्रमसाध्य और प्रभावकारी है।

नाट्यालोचन में वर्णित पात्र तभी चरित्र बनता है जब रंगालेख से गुजरकर अभिनेता और निर्देशक उसे प्रस्तुत करते हैं। चरित्र निर्माण की प्रक्रिया के संबंध में मुक्तिबोध का मत है – विभिन्न व्यक्तियों के लिए सृजन प्रक्रियाएँ भिन्न हैं, विभिन्न युगों में सृजन प्रक्रियाएँ अलग–अलग होती हैं। विभिन्न साहित्य प्रकारों के लिए भी सृजन प्रक्रियाएँ भिन्न–भिन्न होती हैं।"

ज्यादातर पश्चिम विद्वानों ने इस प्रक्रिया को गुह्य कहा है। थेकरे भी इसी रहस्यमयता की ओर संकेत करते हुए कहते हैं दृ 'मैं अपने चरित्रों को नियंत्रित नहीं करता, मैं उनके हाथों में हूँ, और जहाँ उनकी इच्छा होती है वे मुझे ले चलते हैं।' अतएव चरित्र–निर्माण की कोई बनी हुई परिपाटी नहीं है। चरित्र एक जीवं अभिव्यक्ति है, जिसे सिद्धान्तों

के खाँचे में नहीं बाँध सकते। इसकी निर्माण प्रक्रिया भी नदी के प्रवाह की भाँति अनंत, अविरल है। हर युग और समाज का वातावरण, नाटककार, अभिनेता, दर्शक अपने–2 युगीन चरित्रों के निर्माण करते हैं। किन्तु जीवन के हर पक्ष को अपने भीतर समेटने वाले चरित्र की निर्माण प्रक्रिया निश्चित रूप से महत्वपूर्ण कर्म है। किन्तु प्रश्न उठता है कि इस महत्वपूर्ण कर्म की महत्ता नाटक और रंगमंच पर कैसे समझी जाए? किसी भी प्रस्तुति को देखने के बाद हमारे मुख से यही शब्द निकलते हैं कि प्रस्तुति अच्छी थी क्योंकि अभिनेता ने बहुत अच्छा अभिनय किया। लेकिन प्रश्न उठता है कि यह अच्छा या बुरा अभिनय क्या है? इसके निर्माण की प्रक्रिया क्या है? क्या इस अभिनय के निर्माण की प्रक्रिया को अभिनेता की आवाज, रंग–भाषण, गतियों, सुन्दरता से परखा–पहचाना जा सकता है या चरित्र के साथ एकमेक होकर अभिनय अपनी सार्थकता पाता है।

जैसे कि पहले भी सिद्ध हो चुका है कि श्अभिनेताश को भरतमुनि से लेकर अरस्तू, देश और विदेश के तमाम रंगचिंतकों ने नाटक और रंगमंच का महत्वपूर्ण कारक माना है। लेकिन इस अभिनेता की रचना प्रक्रिया माने चरित्र निर्माण की प्रक्रिया एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिस पर विचार–विर्मश किया जाना है।

इस प्रश्न पर विचार करते हुए सबसे पहला प्रश्न उठता है कि अभिनय क्या है? इस प्रश्न पर विचार करते हुए भारतीय और पश्चिमी चिंतकों का मत है कि अभिनेता की कला ही अभिनय है। इस कला में कथा, कहानी या विचार मूल रूप से अभिनेता के लिए सहयोगी होते हैं। लेकिन इस सहयोग के बाद अभिनेता की चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। प्रक्रिया में अभिनेता को सिर्फ अपने भीतर से गुजरना होता है। किसी विशिष्ट चरित्र को निभाते हुए अभिनेता उस चरित्र को निभाने के लिए स्वयं ही माध्यम होता है। साथ काम कर रहे अभिनेताओं का बड़ा समूह और निर्देशक आदि भी केवल चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया के साथी तो हो सकते हैं अर्थात् चरित्र–निर्माण की तैयारी में विशिष्ट चरित्र की सहायता तो कर सकते हैं लेकिन यह तैयारी मूल रूप से अभिनेता की अपनी सम्पत्ति है।

वस्तुतः चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया या 'उसका अनुभव भी गूंगे के मुंह में गुड़ वाले मुहावरे की पुष्टि करता है, अर्थात् वह उसे अनुभूत तो करता है लेकिन उसके विषय में भी विस्तार से दूसरों के साथ शेयर नहीं कर पाता।'

वास्तव में चरित्र की रचना–प्रक्रिया आलेख के पाठ से आरम्भ होती है। नाटक का पाठ प्राप्त करने के बाद अभिनेता धीरे–धीरे चरित्र में पैठना शुरू करता है। वेशभूषा, मुखसज्जा, प्रकाश, ध्वनि का योग, पात्र की आर्थिक–सामाजिक स्थिति अभिनेता के चरित्र में ढलने में सहायक होते हैं। इस प्रक्रिया के माध्यम से 'जो चरित्र वह निभाने जा रहा है, हूबहू वैसा ही बनने और दिखने का प्रयत्न करे। दूसरे शब्दों में अभिनेता एक चरित्र को अपने ऊपर, बाहर से आरोपित करके अपने भीतर की तरफ यात्रा करता है।' यही स्तानिस्लाव्स्की की अभिनय प्रक्रिया है जिसकी चर्चा हम पहले भी कर चुके हैं। जिसे स्तानिस्लाव्स्की 'शारीरिक क्रियाओं का सिद्धान्त' कहते हैं।

चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया के लिए दूसरी दृष्टि है– भूमिका की तैयारी की शुरूआत अपने भीतर से करें। यानि उस काल्पनिक चरित्र को बाहर से स्वयं पर आरोपित करने की जरूरत नहीं है बल्कि चरित्र और पात्र के व्यक्तित्व में मेल खाते बिन्दुओं की पहले से ही तलाश की जाए। इस प्रकार अभिनेता को चरित्र निर्माण की प्रक्रिया में खासी मशक्कत नहीं करनी पड़ेगी । चरित्र निर्माण के लिए जो चाहिए पात्र में वह पहले से ही मौजूद है। अतएव

अभिनेता को कुछ अलग से अपने चरित्र में उतारने की आवश्यकता नहीं है। ब्रेख्त ने भी अपने चरित्र–निर्माण के सिद्धान्त में चरित्र की बाह्य रेखाओं को उतना महत्व न देकर उसके हाव–भाव, स्वभाव, व्यवहार, प्रतिक्रियाओं पर महत्व दिया है।

चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया में तीसरी दृष्टि कहती है कि पात्र भीतर और बाहर से एकदम खाली पात्र की तरह होता है। उससे जो भी चरित्र भरा जाएगा उसे वह पूरी संजीदगी और जीवंतता से प्रस्तुत करेगा। यह दृष्टि भारतीय रंग– परम्परा के अधिक निकट है। इसमें चरित्र एक खाली पात्र में भरा गया वह जीवंत रूप है जिसे दर्शक उसकी जीवंतता या संजीदगी के आधार पर ही पहचानते हैं और उसकी प्रशंसा या आलोचना करते हैं। इस दृष्टि से चरित्र का निर्माण करने की प्रक्रिया में पात्र का भीतर से तटस्थ, खाली या निसंग होना जरूरी है तभी उसमें कोई भी चरित्र पूरेपन के साथ उतारा जा सकता है। इस दृष्टि का प्रयोग उन चरित्रों के निर्माण में किया जाता है जिनकी वेशभूषा, मुखसज्जा, अलंकार, रंग पहले से ही जगत प्रसिद्ध है। इसमें दर्शक उस चरित्र विशेष को देखने नहीं अपितु पात्र विशेष द्वारा उस चरित्र–विशेष को निभाए जाने यानि अभिनेता की कला और चरित्र निर्माण की उसकी तैयारी की सुन्दरता को देखने आता है। 'दरअसल, यही वह मूलमंत्र है, जिसे अधिकांश अभिनेता समझ नहीं पाते और वे चरित्र की मात्र बाहरी रेखाओं और रंगों में सिमटकर रह जाते हैं। इसीलिए उनका अभिनय निहायत सतही एकांगी और बनावटी लगता है और दर्शक भी उससे प्रभावित नहीं हो पाता। .....वह एक्टर से ज्यादा परफार्मर होने लगता है।'वास्तव में अभिनेता की कला जहाँ आन्तरिक पक्ष के लिए होती है और सूक्ष्मता की मांग करती है वहीं परफॉर्मर का सारा ध्यान बाहरी पक्ष, तकनीकी कौशल, कलाबाजी पर रहता है। चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया का पूर्ण पालन और प्रयोग एक अच्छे अभिनेता की कसौटी है। एक अच्छा अभिनेता अपने चरित्र के माध्यम से ही पहचाना जाता है और अपना प्रभाव आम जनसमुदाय पर छोड़ता है। चरित्र–निर्माण की यह प्रक्रिया जहाँ श्रम की माँग करती हैं वहीं सतर्कता भी इस प्रक्रिया में जरूरी है। कभी– कभी पात्र चरित्र में इतना रम जाता है कि उसके लिए उस चरित्र से बाहर निकलना मुश्किल होता है। मंच पर भी चरित्र में लीन होने जानी की अभिनेता की प्रवृत्ति अभिनय में बाधा उत्पन्न करती है। अन्ततः चरित्र फिर पात्र ही है। चरित्र के रूप में भी अपनी सफलता कोई अभिनेता तभी सिद्ध कर सकता है जब उसमें कला को कला की भांति जीने की कलाकारी है। चरित्र को केवल जीवन से अलगाव बनाए रखना चाहिए। चरित्र आनन्द का संचार कर इस भ्रम को भी तोड़ता रहे कि यह यथार्थ नहीं है। सच्चा अभिनेता वही है जो अपने चरित्र का दृष्टा भी होता है। भरतमुनि ने भी इस निष्पत्ति के संदर्भ में यही बात कही है कि इसका भोक्ता अभिनेता न होकर दर्शक है। इसी संदर्भ में भरतमुनि ने अभिनेता की तीसरी आँख की बात भी कही जिसमें वह अपना ही निरीक्षण–परीक्षण करता चलता है। चरित्र के निर्माण की प्रक्रिया में अभिनेता के पास जो यन्त्र होता है– वह है उसकी आवाज, उसका शरीर और उसका मस्तिष्क । पात्र अपने इन तीन औजरों का प्रयोग कर चरित्र को गढ़ता है। इस प्रक्रिया में पात्र के जीवनगत अनुभव, पर्यवेक्षण भी योगदान देते हैं। जीवन से बटोरी हुई स्थितियाँ अभिनेता के साथ रहती जीवन के हैं। जब अभिनेता जीवन का अनुकरण करता हुआ, चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया में उतरता है तब ये जीवनगत अनुभव की उसे चरित्र में ढलने में सहायक होते हैं। दूसरी चीज अनुभवों के अलावा जो चरित्र–निर्माण में सहायक होती है वह है– कल्पना–शक्ति। कुछ दृश्य–विचार जो अभिनेता के अनुभव का हिस्सा नहीं है उनमें वह

अपनी कल्पनाशक्ति के सहारे उतरता है। अनुभव और कल्पना दोनों ही अभ्यास के माध्यम से चरित्र की प्रायोगिक परीक्षा को सफल बनाते हैं। यानि निरन्तर अभ्यास से ही अभिनेता चरित्र निर्माण की प्रक्रिया में अपने अनुभव और कल्पना का समुचित प्रयोग कर पाता है। अभिनेता को अपने शरीर और वाणी रूपी 'टूल' पर सम्यक् नियन्त्रण के लिए भी अभ्यास की जरूरत होती है। अभ्यास अभिनेता की कला को मांजता है। अभिनेता की सक्रियता, गतिशीलता, लोच और स्वास्थ्यवर्द्धन में सहायक होता है। चरित्र निर्माण की प्रक्रिया और निर्मित चरित्र की प्रस्तुति एक कठिन कार्य है जो परिश्रम, पूर्ण निष्ठा और प्रतिबद्धता की माँग करता है। चरित्र की निर्मिति एक भ्रम को सत्य के आस्वाद से भरपूर बनाने की कला है। अपनी प्रकृति में चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया कला भी है और तकनीक भी।

निष्कर्ष चरित्र–निर्माण की प्रक्रिया में अभिनेता के भीतर से गुजरते हुए चरित्र की व्यापक दर्शक समुदाय तक अभिव्यक्ति होती है। चरित्र का अनुभव समस्त दर्शक वर्ग का अनुभव बन जाता है। चरित्र के निर्माण की यही प्रक्रिया नाटक और रंगमंच की सामूहिकता का आधार है। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि चरित्र की परिकल्पना दृश्य जगत का आधार है। दृश्य जगत में चाहे रंगमंच हो या टी०वी०, सिनेमा, सभी चरित्रों की धुरी के इर्द–गिर्द अपना संसार रचते हैं। रंगमंच में चरित्र का महत्व तो पहले ही स्थापित हो चुका है। चरित्र के बिना नाटक और रंगमंच की परिकल्पना ही सम्भव नहीं। चरित्र की निजता दर्शक को आकर्षित–विस्मित करके यवनिका पतन तक उसे दृश्य माध्यम से बाँधे रखती है। साथ ही चरित्र का साधारणीकरण दर्शक को उस भावभूमि तक ले जाता है जहाँ भिन्नताओं के बावजूद अभिन्नता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार– 'एक मनुष्य की आकृति से दूसरे मनुष्य की आकृति नहीं मिलती, पर जब मनुष्यों की आकृतियों को एक साथ लें तो एक ऐसी सामान्य आकृति भावना भी बँधती है जिसके कारण हम सबको मनुष्य कहते हैं। इसी प्रकार सबकी रुचि और प्रकृति में भिन्नता होने पर भी कुछ ऐसी अन्तर्भूमियाँ हैं जहाँ पहुँचने पर अभिन्नता हैं।' चरित्र परिकल्पना भी दृश्य विधाओं के माध्यम से एक ऐसे सामाजिक चरित्र की खोज और पड़ताल का प्रश्न है जहाँ एकता और समत्व का भाव भी निर्मित किया जा सके और वैयक्तिक कर्त्तव्यों की जागृति भी लाई जा सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- Encyclopaedia of Natyasastra ¼Vol- I½] Radhavallabh Tripathi] p- 28

2. (सीहंग, बीइंग एंड बिकमिंग, पृ० 25), सन्दर्भ, नाट्यशास्त्र विश्वकोश, राधावल्लभ त्रिपाठी, पृ० 29

3. अभिनय चिन्तन, दिनेश खन्ना, रा०नि०वि०, पृ० 165

4. वही, बुक फ्लैप से।

5. सिद्धान्त और अध्ययन गुलाबराय पृ० 90